विवाह करके लड़कियों को ही पति के घर क्यों जाना होता है ?

जिस वैदिक समाज की आदिम वैवाहिक कल्पना 'सूर्या' के रूप में ऋग्वेद में प्रस्तुत की है, उसकी कल्पना न जाने कितनी शत-सहस्त्राब्दियों के बाद भी समाज में यथावत देखी जा सकती है। ऋषिका सूर्या का ऋग्वेद के दसवें मण्डल में सूक्त है :

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवा भव। ननांदरी सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवेषु । ।

अर्थात, हे वधू, तू ससुराल जाकर (अपने सदाचरण और सबके साथ अच्छे बर्ताव से) सास ससुर नंद के ऊपर अधिपत्य जमाकर सर्वत्र महारानी होकर रह !

कारण अवलोकन :

(1) ये परंपरा यानि कन्या का विवाह कर के अपने वर/पति के घर जाना ऋग्वैदिक काल से है और थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ अभी तक समाज में यथावत है। कोई व्यवस्था यदि सर्वहितकारी नहीं होती तो इतने लंबे समय तक टिक नहीं पाती। तो पहली बात ये प्रथा इतनी प्राचीन है ! पुराणों के काल से भी पहले की प्रथा, अत: परंपरा। पुराणों की बात इसलिए कि कई प्रकार का दूषण उसके बाद से आना आरम्भ हुआ जब गूढ़ ज्ञान को अधिक से अधिक लोगों तक सरलता से समझाने के लिए लाक्षणिक भाषा में कथाओं और पात्रों की रचना हुई, जिसका अक्षरश: और स्थूल अर्थ लेकर के भ्रांतियों या ऐसी मान्यताओं का प्रसार हुआ जो तार्किक नहीं लगतीं।

एक तर्क जो इस प्रथा के बदलाव के पक्ष में दिया जाता है कि सती प्रथा और बाल विवाह जैसी कुप्रथाएँ भी बंद हुईं और यह इस बात का द्योतक है कि निरंतर परिवर्तनशीलता व 'सुधार' हमारे धर्म का, सनातन का परिचायक है इसलिए इस प्रथा (विवाह कर के कन्या का ससुराल जाना) को भी क्यों न बदलें ! तो पहली बात यह कुप्रथा नहीं प्रथा है। प्रथा केवल इसलिए बदलनी चाहिए क्योंकि वह पुरानी है, कुछ उचित तर्क नहीं लगता। दूसरा, सती भी प्रथा नहीं थी। आपने और हमने जो देखा सुना है वह अधिकतर ताज़े लिखे इतिहास में पढ़ा है और राजा राममोहन राय जैसे समाज सुधारकों के जीवन चरित्र के माध्यम से जानते हैं।

पहले तो उसकी तह तक जाकर देखिए की क्या यह प्रथा थी ? – देशव्यापि और चिरकालीन ? अथवा क्षेत्र

विशेष में कुछ समय के लिए आयी विसंगति ! दूसरा, राजपूतों के रण पश्चात होने वाले जौहर को यदि हम सती-प्रथा मानते हैं तो ये ठीक नहीं। ऐसा ही कुछ बाल-विवाह के साथ है। बाल-विवाह को चिर कालिक प्रथा मानते हों तो खोजें-पढ़ें कि लड़कियों की शिक्षा 16-17 वर्ष की आयु तक होती थी और लड़कों की 25 वर्ष तक। इस आयु में विवाह होने को बाल-विवाह कहा जाएगा ? तो इस विसंगति के आरम्भ होने का काल ढूंढें और कारण भी। तो पहला बिंदु यह है कि यह प्रथा वैदिक काल से ही स्थापित है। ऋषि-मुनियों द्वारा स्थापित व्यवस्थाएँ बहुत सूक्ष्म, गहन चिंतन व परीक्षण के बाद स्थापित करीं गयीं थीं,जो बहुत लचीली हैं, यानी परिवर्तनशील होते हुए भी सशक्त सिद्धान्तों पर आधारित हैं जो पूर्णतया व्यावहारिक हैं। इसलिए इतने समय तक चल पा रहे हैं।

इस प्रश्न पर जब मत प्रकट किया किया जाता है कि इसे बदलना समाज को तोड़ने या राष्ट्र को नष्ट करने की ओर एक कदम होगा, तो उसका उपहास व तिरस्कार किया जाता है । किसी भी एक ओर के अंतिम ध्रुव पर अपना विचार बाँधने की बजाय समझने के लिए एक मूल बात ये है कि पूर्वजों के अतीत को जानने की उत्कंठा व अभिलाषा हर मनुष्य की होती है। जब अपने ही जीवन की अतीत कालिक स्मृतियों को वह परम् समान व स्नेह की दृष्टि से देखते है भले ही वह सुख की हों या दुख की, ऐसे ही अपने प्राचीन ज्ञान व परम्परा भी हमारे राष्ट्र की स्मृतियाँ हैं, उन्हें खो देने पर हम राष्ट्र का अस्तित्व भी खोते जाते हैं।

ऐसे में एक रोचक सत्य ये भी है दक्षिण भारत के कुछ प्रान्तों में, जहाँ मातृ-प्रधान समाज का रूप है, वहाँ लड़के विवाह करके लड़की के घर जाते हैं, गोत्रादि बदलते हैं, वंशवृक्ष मातृपक्ष (माता की सत्ता से, पिता की नहीं) से चलते हैं। इसका मूल वैदिक-प्रथाओं से ये अपभ्रंश क्यों और कैसे हुआ, यह जानना रोचक होगा। ऐसा सीमित क्षेत्रों व कुलों में ही होता है, सर्वव्यापि नहीं है।

(2) नर और नारी की रचना में अंतर है। मानव शरीर सत, रज और तम, इन तीन गुणों से बनता है, उसमें ये तीन गुण होते हैं। नर सत प्रधान है और नारी रज प्रधान है।

ईश्वर के अहंकार ने, सत से सृष्टि की रचना की प्रेरणा करी और प्रकृति ने रज से सृष्टि की रचना करी। स्त्री को प्रकृति ने जीवन सृजन का गुण व लक्षण दिया है। पतञ्जलि के अनुसार स्त्री का अर्थ है – 'स्त्यापति अस्यां गर्भ इति स्त्री' – नारी को स्त्री इस लिए कहते हैं कि गर्भ की स्थिति उसके भीतर होती है। रजोधर्म, गर्भधारण व स्तन्य (breast milk) स्त्री की योग्यता है। न्याय बताता है 'गर्भधारण योगत्वं' – गर्भधारण की योग्यता उसका लक्षण है ! मनुष्य होते हुए भी जिसमें स्तन्य योग्यत्व हो वह स्त्री है। इन लक्षणों का उद्देश्य फल या उपस्थिति का कारण है संतान उत्पत्ति (संतति अथवा प्रजा की वृद्धि) अर्थात मातृत्व की प्राप्ति।

नर में केवल पुरुषत्व होता है और नारी में स्त्रीत्व और कन्यात्व दोनों होते हैं। वस्तुतः जब एक पिता विवाह संस्कार के समय पुत्री का हाथ जामाता के हाथ में देता है तो केवल उसके कन्यात्व का दान करता है, उसके स्त्रीत्व का नहीं। पाणिग्रहण संस्कार में उसके कन्यात्व अर्थात भोग्यत्व की योग्यता (उसके द्वारा सर्जन करे जाने की योग्यता) का अमूल्य दान कन्या का पिता वर को देकर उसके संरक्षण व पोषण का दायित्व वर को देता है (वर के परिवार को नहीं)।

अपने ही घर में परिपक्व स्त्री होने पर भी वह संतान की छाया से बाहर नहीं आ पाती। जब तक स्त्री स्वयं संतान की भूमिका व भाव में रहेगी तो माँ होने के भाव का दमन रहेगा। उसका पूर्ण उत्तरदायित्व लेने का भाव सीमित रूप में जागृत रहेगा क्योंकि वह स्वयं अपना उत्तरदायित्व अपने माता-पिता पर छोड़े है।

(3) स्त्री रजप्रधान है और पुरुष (नर) सत प्रधान है। रज कामना का, इच्छा का द्योतक है। रज प्रधान होने के कारण उसमें लालसा, इच्छा, चाह प्रबल होती है, अतः स्त्री का एक नाम (विशेषण रूपी) 'ललना' है। इसी रज गुण के कारण स्त्री प्रेम-प्रधान है (और सत गुण के कारण पुरुष तर्क-प्रधान), लज्जाशीलता उसकी सहज-प्रेरणा है, प्राकृतिक लक्षण है। जैसे छुई-मुई के पौधे का छूते ही सिकुड़ जाना उसका प्राकृतिक लक्षण है।

प्रकृति ने इन्हें ऐसा बनाया है तो 'ऐसा नहीं होना चाहिए' का विचार तर्क की परिधि से बाहर है। इन गुणों के कारण स्त्री की कोमलता को लता स्वरूप बताया जाता है जिसे बढ़ने के लिए आधार-आश्रय की आवश्यकता होती है। इसी लिए उसके कन्यात्व को वर को सौंपते हुए कन्या का पिता उसके संरक्षण व पोषण का दायित्व वर को देता है। वर अथवा पुरुष उसका संरक्षक व पोषक होता है, स्वामी नहीं, उसका अधिकार नहीं होता स्त्री पर क्योंकि स्त्रीत्व का तो दान ही नहीं दिया गया, केवल कन्यात्व का दिया गया है।

जब संरक्षण व पोषण का दायित्व वर को सौंप दिया तो पिता के घर न रह कर स्त्री वर के घर जाती है क्योंकि वर अपने उत्तरदायित्व का वहन अपनी अनुकूल व प्रभावी परिस्थितियों में अधिक अच्छी प्रकार कर पायेगा। इसे लता के रूपक से समझते हैं कि लता बिना किसी सहारे के, भूमि पर पड़ी-पड़ी भी बढ़ सकती है, परंतु जब उसे उचित आश्रय मिलता है तब उसके गुण, शक्ति व फल-फूल पूर्ण व उत्तम रूप से आते हैं। जब उस लता रूपी स्त्री का दायित्व वर को सौंप दिया तो पोषक का दायित्व स्थानांतरित हो गया। वर का कन्या के घर आ जाना एक ही घर में दो संरक्षक/ पोषक की स्थिति उत्पन्न करता है। सोचिये इसमें सामंजस्य कब तक शान्तिपूर्वक रहेगा ?

(4)स्त्री के प्रेम प्रधानता के दो स्वरूप होते हैं – भावुक या आश्रित (emotional or dependant) किसी भी स्त्री पर ध्यान देंगे तो दोनों में एक स्वरूप स्पष्ट दिखेगा। पुरुष तर्क प्रधान है, उसके भी दो स्वरूप होते हैं – तार्किक या जड़। दोनों प्रकार के पुरुष का बाहरी स्वरूप एक ही होता है। जहाँ भावुकता की, प्रेम की आवश्यकता हो वहाँ पुरुष को पुरुषार्थ करना पड़ेगा और स्त्री में स्वाभाविक है। ऐसे ही यदि स्त्री को तार्किक बुद्धि की प्रधानता विकसित करनी है तो उसे पुरुषार्थ करना पड़ेगा। अब तुलना करिए, कौन नई परिस्थितियों में प्रसन्नतापूर्वक व सुलभता से रह पायेगा, – जड़ या भावुक, तार्किक या आश्रित ?

(5) नर बीज का दाता है (giver) और स्त्री बीज की पात्र है, ग्रहीता है (receiver) प्रकृति ने बीज को पोषित कर उससे फल बनाने का दायित्व स्त्री को दिया है, प्रकृति दायित्व लेने वाले (receiver) को देती है, देने वाले (giver) को नहीं। देने और लेने वाले समानांतर कब होंगे ?,जब देने वाले का भी कुछ उत्तरदायित्व हो। इसलिए ग्रहीता के संरक्षण व पोषण का, माता की देखभाल का उत्तरदायित्व नर

अथवा वर को देने की मनोवैज्ञानिक और सामाजिक व्यवस्था का सृजन हुआ। यदि उस स्थिति में बेटी पिता के ही घर पर है तो वर पूर्ण उत्तरदायित्व नहीं ले इसकी गहन संभावना सदैव रहेगी

लेखिका परिचय
अंशु अपने को एक सतत जिज्ञासु कहती हैं। वर्तमान में संस्कृति आर्य गुरुकुलम में शिष्य तथा शिक्षक हैं। दर्शन, वैदिक शिक्षा और आयुर्वेद गुरुकुल में शिक्षण के मुख्य विषय हैं। प्राप्त ज्ञान को साझा करने की मंशा से विभिन्न वैदिक विषयों पर लिखती हैं।भारतीय इतिहास और वैदिक ज्ञान के आधुनिक शास्त्रीय प्रयोग उनकी रुचि के विषय हैं। फिनटेक, आईटी कंसल्टिंग के क्षेत्र में 20 वर्ष बिताने के बाद अब वैदिक ज्ञान, शिक्षा और शिक्षा पद्धति की साधना यात्रा पर निकल चुकी हैं।

साभार – https://www.indictoday.com/ से